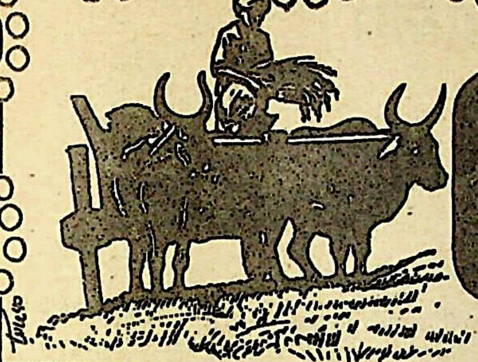
कृषि और पशुपालन

G. B. Singh

जून, १९६२



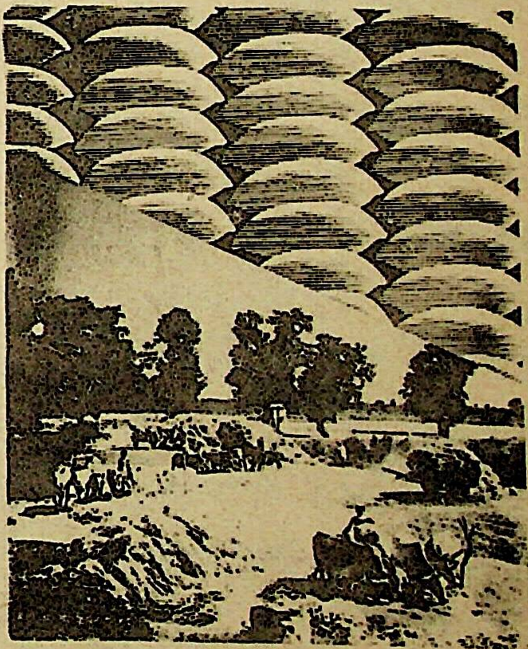


कृषि और पशुपालन

उत्तर प्रदेश सरकार के कृषि, कृषि इन्जीनियरिंग, पशुपालन तथा गन्ना विकास विभाग की मुख पत्रिका

वर्ष १२ | जून, १९६२ | अंक १२

मुख पृष्ठ का चित्र



वार्षिक मूल्य ८)

एक प्रति—६२ न. पै.

प्रकाशक:—

प्रसार, शिक्षा एवं प्रशिक्षण ब्यूरो, कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

कृषि और पशुपालन

जून, १९६२

विषय-सूची

—o—

हमारी गरीबी कैसे मिटे ?

चरण सिंह

हमारे सामने देश की जो विभिन्न समस्यायें हैं, उनमें बुनियादी समस्या गरीबी की है। गरीबी का अर्थ है धन की कमी। सवाल उठता है कि धन किसे कहते हैं? क्या नोट या रुपया ही धन है? नहीं। धन तो उस सामान या सामग्री को कहते हैं जिसका उपयोग करने से मनुष्य की कोई जरूरत पूरी हो जाय। मनुष्य की जरूरत या आवश्यकतायें अनेक हैं। परन्तु मोटी सी छः आवश्यकतायें प्रत्येक मनुष्य की हैं अर्थात् भोजन, कपड़ा, मकान, तालीम, चिकित्सा व आने जाने के साधन। अब दूसरा सवाल यह उठता है कि मनुष्य की इन व दूसरी जरूरतों को पूरा करने की सामग्री कहाँ मिल सकती है। यह सामग्री या सामान हमारे देश में प्रचुर मात्रा में सुलभ हो जाय तो हमारा देश धनवान हो जाय।

धन पैदा होने की चार ही जगहें हैं, पाँचवीं नहीं— खेत, खान, जानवर और कारखाने। कारखाने असल में माल या धन पैदा नहीं करते बल्कि माल की शकल बदल देते हैं। घड़ी लोहे की बनी होती है जो कारखाने में बनती है। घड़ी बनाने के लिये लोहा आवश्यक वस्तु है। लोहा खान से निकलता है। यदि किसी देश में लोहा नहीं है तो वहाँ घड़ी नहीं बन सकती। इसी प्रकार जो कपड़े हम पहनते हैं, कपास से बनते हैं। अगर हमारे देश में कपास की खेती बन्द हो जाय तो कपड़े के कारखाने भी नहीं रह सकते। गरम कपड़े भेड़ की ऊन से बनते हैं। यदि देश में भेड़ों से ऊन न मिले तो गरम कपड़े नहीं बनाये जा सकते। इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि धन पैदा करने की जो चौथी जगह कारखानों की बनाई गई है वहाँ वास्तव में धन पैदा नहीं होता बल्कि धन या माल की शकल बदल कर उसको मनुष्य के उपयोग के लायक बनाया जाता है। कच्चा माल असल में बाकी तीन जगहों में ही पैदा होता है जिसका उपयोग कारखाने करते हैं। कच्चा माल जो इन तीनों जगहों में पैदा होता है, कारखाने में शकल बदलने के बाद ही इस्तेमाल के काबिल होता है। कपास जैसे खेत से निकलती या ऊन जैसे भेड़ से मिलती है, ओढ़ने या पहनने के योग्य नहीं होती। लोहा कलाई

में बाँधने से घड़ी का काम नहीं कर सकता है। जो चीजें शकल बदलने के बाद कारखाने से निकलती हैं, उन्हें पक्का माल कहते हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कारखाने में कोई नया माल पैदा नहीं होता बल्कि माल की शकल बदल देते हैं। इस प्रकार ऊपर बताई गई धन पैदा होने की चार जगहों में से यह एक निकाल देने पर तीन स्थान शेष रह जाते हैं।

इन बाकी तीन स्थानों में से खेत और खान असल में एक ही चीज के दो अंग हैं, अर्थात् धरती माता की सतह के टुकड़े को खेत कहते हैं और उसके पेट को खान कहते हैं। खेत और खान को अलग-अलग न कह कर यदि हम धरती शब्द का प्रयोग करें तो दोनों का बोध हो जायगा। इस प्रकार धन की उत्पत्ति के तीन स्थानों के बजाय अब दो ही स्थान रह गये, भूमि और जानवर।

पशु वहीं रहेंगे जहाँ ज़मीन से उनको भोजन मिल सकेगा। वाड़या घास और चारे के स्थान पर ही पशु स्वस्थ रहेंगे और दूध देने वाले जानवर अधिक मात्रा में दूध देंगे। जहाँ जमीन कम है वहाँ जानवर भी कम ही होंगे। जापान में बहुत कम जानवर हैं क्योंकि प्रति किसान जमीन ही बहुत कम है। वहाँ के किसान अपने भोजन के लिये अन्न आदि पैदा करें अथवा जानवरों का चारा? अमेरिका में प्रति किसान जमीन ज्यादा है इसलिये वहाँ एक मन तक प्रति दिन दूध देने वाली गायें हैं जिससे लोगों को खूब दूध पीने को मिलता है। वहाँ औसतन २१५ एकड़ भूमि एक काश्तकार के पास है, जिसमें ६५ एकड़ भूमि में वह खेती करता है और १५० एकड़ में चरागाह, जंगल और बाग रखता है। हिन्दुस्तान की गाय औसतन दो सेर दूध देती है, जब कि अमेरिका की गाय २० सेर। यहाँ और वहाँ में दस गुने का अन्तर है क्योंकि प्रति व्यक्ति जमीन में बहुत अन्तर है। जापान में प्रति परिवार दो एकड़ जमीन का औसत है, इसलिये बैल की भी जरूरत नहीं है। हमारे यहाँ भी जब प्रति परिवार जमीन का औसत रकबा घट जायगा तो बैल गायब हो जायेंगे और हाथ से खेती होगी। ऐसी परिस्थिति में दूध भी नहीं मिलेगा। मतलब यह हुआ कि जानवर भी बगैर जमीन के नहीं रह सकते हैं।

इस प्रकार अन्त में हम कह सकते हैं कि दुनिया का जितना भी धन है वह किसी न किसी रूप में कभी न कभी जमीन से ही पैदा हुआ है और होता है। इसीलिये धरती को माता कहते हैं। सारी दौलत का उद्गम-स्थान, आदि-स्रोत धरती माता ही है।

अब इस निष्कर्ष को, कि सारी दौलत जमीन से पैदा हुई, दिमाग में रखकर आगे बढ़ें। हमारा देश यदि निर्धन और गरीब है तो

उसका मुख्य कारण यह है कि प्रति परिवार या प्रति व्यक्ति हमारे देश में जमीन बहुत कम है। अमेरिका सबसे मालदार देश है क्योंकि वहाँ प्रति व्यक्ति जमीन बहुत ज्यादा है। उनके पास ३६ लाख १० हजार वर्ग मील जमीन है और हमारे देश में १२ लाख ७० हजार वर्ग मील, अर्थात् उनके पास हमसे लगभग तीन गुनी जमीन है। दूसरी तरफ हमारे यहाँ लगभग ४३-४४ करोड़ जनसंख्या है और उनके यहाँ १८-१६ करोड़। जमीन उनके यहाँ ज्यादा और आदमी हमारे यहाँ। यहाँ यदि एक आदमी के हिस्से में एक बीघा जमीन आवे तो उनके यहाँ ६ या ७ बीघे आवेगी। इसलिये वे मालदार हैं। यहाँ की प्रति व्यक्ति आमदनी ३०० रु० साल है, अमेरिका की १२००० रु० अर्थात् यहाँ वालों से ४० गुना। एक एक घर में तीन चार मोटरें हैं, रेडियो हर घर में है और यही बात टेलीविजन की है। जिस घर में यह चीजें नहीं, वह घर अभागा माना जाता है। दुनिया के पाँच सात मुल्कों को छोड़ कर, हिन्दुस्तान के मुकाबले सबके पास फी कस जमीन ज्यादा है।

हम देश को मालदार बनाना चाहते हैं। अंग्रेजों को यहाँ से निकालने के दो ही उद्देश्य थे, एक तो गैरत या स्वाभिमान की खातिर निकालना चाहते थे क्योंकि देश चाहे गरीब हो या अमीर, हमारे स्वाभिमान का तकाजा था कि हम स्वतंत्र हो कर रहें। दूसरा उद्देश्य यह था कि स्वतंत्र रह कर हम देश को मालदार बनावें, क्योंकि अंग्रेजों के जमाने में देश दिन प्रति दिन गरीब होता जा रहा था। पहला मकसद तो पूरा हो गया अर्थात् हम अपनी किस्मत के खुद मालिक हो गये। अपने मुल्क पर किसी दूसरे का राज्य नहीं रहा, अपने लोगों का ही राज्य है। अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा ही मुल्क का राज्य चलाया जाता है। अब हम संसार में अपना सर ऊँचा करके चल सकते हैं। परन्तु देश को मालदार बनाने का दूसरा उद्देश्य अभी तक पूरा नहीं हुआ है। इसका पूरा होना बहुत कठिन है। देश को मालदार बनाना आसान काम नहीं है। गरीबी मिटाने के लिए बहुत से प्रयत्न हुये हैं और कुछ हद तक उनमें सफलता भी मिली है। किन्तु जो सपने हम देखा करते थे वे अभी पूरे नहीं हुए। देश को जैसा मालदार हम बनाना चाहते थे वैसा हम नहीं बना पाये। हम समझते थे कि अंग्रेज चले जायेंगे तो देश जल्द मालदार हो जायगा। ऐसा आभास हमारे लीडरों के व्याख्यानों से मिलता था। यह धारणा गलत साबित हुई, अंग्रेजों के जाने का मतलब केवल इतना हुआ कि पहले जो हमारे हाथ पांव बँधे थे वे अब खुल गये और हम दूसरों के आधीन नहीं रहे।

अब देश को मालदार बनाने का काम हम सबके ऊपर आ पड़ा है। पहले जो कोई मुसीबत पड़ती थी, अंग्रेजों के मत्थे मढ़ दी जाती थी। अब जिम्मेदारी हम सबके ऊपर आ गई है। अब यह आभास होता है कि गरीबी मिटाना, देश को मालदार बनाना आसान काम नहीं है, हंसी खेल नहीं है। देश में तरह तरह की बातें लोग आपस में करते हैं और कहते हैं कि स्वराज्य तो हो गया लेकिन आम जनता तो जैसी तब थी वैसी अब भी है। ग़ौर से देखें तो कुछ फ़र्क जरूर पड़ा है। लेकिन जैसे सपने हम देखा करते थे कि अंग्रेज चला जायगा तो हम मालामाल हो जायेंगे वे साकार नहीं हुए। इसमें माना कि थोड़ा बहुत कसूर हमारे लीडरों का है और सभी जनसेवकों का है जो सब्जबाग दिखलाते रहे लेकिन पूरा कसूर नहीं। क्यों?

जैसा हम देख चुके हैं धन जमीन के अन्दर पैदा होता है। अब हमारे सामने दो ही रास्ते हैं, एक तो यह कि प्रति व्यक्ति जमीन अधिक होगी, तभी मालदार होंगे। इसलिये जमीन कहीं से आनी चाहिये। परन्तु जमीन तो कोई बना नहीं सकता। जमीन न महाराजा रामचन्द्र जी ने गढ़ी और न कृष्ण जी ने और न अब नेहरू जी के बस की बात है। जमीन बनाई नहीं जा सकती, जो जमीन कुदरत ने दी है, वह मौजूद है। कुछ लोग कह सकते हैं कि दूसरों से छीन ली जाय। छीनना उचित नहीं, छीनने पर भी तो लड़ाई हो जायगी, जो गांधी जी की शिक्षा के विरुद्ध है और वैसे भी हमारे देश को लड़ाई से हानि होगी। दूसरी तरकीब यह हो सकती है कि यदि हमारी आबादी ४४ करोड़ के बजाय ११ करोड़ हो जाय तो प्रति व्यक्ति चार गुनी जमीन हो जायगी और हम आज की अपेक्षा चार गुने मालदार हो सकते हैं। परन्तु क्या कोई कौम अपने को मार सकती है? नहीं, कोई नहीं। आबादी घटने की बात कौन कहे, वह तो उल्टे तेजी से बढ़ रही है। सन् १९५१ में हमारी जनसंख्या ३६ करोड़ थी। अब सन् १९६१ में ४३-४४ करोड़ हो गई। दूसरी तरफ जमीन १२ लाख ७० हजार वर्ग मील जो सन् १९५१ में थी वही सन् १९६१ में भी है। जमीन तो जरा भी नहीं बढ़ी है। सिर्फ मेंड़ पर मेंड़ लगती चली गई हैं और वह जमीन समय के साथ प्रति व्यक्ति कम होती जा रही है। फिर मालदार कैसे हों?

मेरे विचार से अमेरिका के समान मालदार होने का सपना देखना छोड़ देना चाहिए। कनाडा भी हमसे तीस गुना मालदार है। यदि हम आज के मुकाबले ५ या १० गुना भी मालदार हो जांय तो हमारे बड़े अच्छे भाग्य होंगे। इस पीढ़ी में अर्थात् दस पन्द्रह साल में यदि हम दूने मालदार हो जाते हैं तब भी बहुत बड़ा काम होगा। जैसा हम देख चुके हैं कि जमीन बढ़ती,

नहीं और आबादी घटती नहीं। तब तो हमारे सामने दूसरा रास्ता यही रह जाता है कि पैदावार प्रति एकड़ बढ़ाई जाय। जितनी गुनी पैदावार बढ़ेगी हम उतने ही अधिक मालदार होंगे।

जमीन की पैदावार बढ़ाने की बात से मेरा तात्पर्य यह है कि फसलों की उपज बढ़े, जानवरों का दूध, भेड़ से बाल आदि की पैदावार बढ़े और खनिज पदार्थ जैसे लोहा, कोयला, तेल और अन्य सब चीजें जो जमीन के अन्दर से निकलती हैं, उनकी पैदावार बढ़े।

खेती की उपज चीन में प्रति एकड़ हमसे दो गुनी, जापान और इटली की तीन गुनी में गेहूं की पैदावार ४॥ गुनी और बेल्जियम व डेनमार्क हमसे फी बीघे पाँच गुना अधिक पैदा करते हैं। इस देश पर दोहरा भार है। एक तरफ जमीन कम और आबादी ज्यादा, दूसरी तरफ पैदावार प्रति एकड़ बहुत कम। एक तो कुदरत की दी हुई है और दूसरी यानी प्रति एकड़ कम पैदावार अपने आलस्य और निर्बुद्धि के कारण है। हमारी गरीबी के यही दो मुख्य कारण हैं।

अगर इनाम पाने वाले लोगों के खेतों में प्रति एकड़ ५० मन गेहूँ और धान तथा ७०० मन आलू पैदा हो सकता है तो सब के खेतों में भी पैदा होना सम्भव है। आगरा जिले के फतेहपुर सीकरी ब्लाक के अरेहरा, आजमगढ़ जिले के लालगंज ब्लाक के जयद्रथपुर व गोंडा जिले के लिलवा ग्राम की ग्राम सभायें चैलेन्ज करती हैं कि उनके गांव की गेहूँ की पूरी फसल ३०-३५ मन प्रति एकड़ की है, कटवा कर देख लिया जाय। तो प्रदेश की और ग्राम सभायें क्यों इतनी उपज नहीं कर सकतीं ? हमारे देश की जमीन में आज से तिगुनी-चौगुनी पैदावार देने की क्षमता है। बात किसी को भले पसन्द न आये लेकिन इसके अलावा गरीबी मिटाने की और कौन तरकीब है ? कानून, सरकार का परिवर्तन या अन्य कोई ऐसी चीज थोड़ा परिवर्तन भले हीं कर दे लेकिन गरीबी मिटाने के लिये खेती, जानवर और खनिज पदार्थों की उत्पत्ति बढ़ानी पड़ेगी। इसके अलावा और कोई उपाय नहीं है।

दूसरी बात समझने की यह है कि दुनिया का अनुभव बतलाता है कि दो देशों में या दो जिलों में यदि जमीन बराबर है और आबादी भी बराबर है तो जिस देश या जिले में किसानों की संख्या अधिक होगी, वह गरीब होगा बनिस्बत उस देश या जिले के जिसमें किसानों की संख्या कम होगी। जमीन और आबादी बराबर हो लेकिन जहां १०० मनुष्यों में ७५ किसान हैं वह गरीब होगा बनिस्बत वहाँ के जहां १०० मनुष्यों में ५५ किसान हैं। अमेरिका को देखिये, जमीन हमारे यहाँ से

(शेष पृष्ठ ३५ पर)

धान की जातियों के गुण का उनकी खेती से सम्बन्ध

राम दयाल सिंह

उत्तर प्रदेश में धान की खेती अन्य फसलों की अपेक्षा ज्यादा होती है। इसकी दो मुख्य जातियाँ इस प्रदेश में प्रचलित हैं जिन्हें क्वारी तथा अगहनी कहते हैं। इन जातियों को क्रमशः जल्दी तथा देर से पकने वाली भी कहते हैं। इन दोनों जातियों के अन्तर्गत बहुत सी किस्में हैं जिनकी खेती प्रदेश के विभिन्न स्थानों में होती है। धान की एक किस्म कुछ ही क्षेत्र में अच्छी पैदावार देती है। इस कारण इसकी अन्य फसलों की अपेक्षा ज्यादा किस्में प्रचलित हैं। क्वारी तथा अगहनी धान की जातियों के स्वाभाविक गुण भी अलग हैं जिनका प्रभाव इनकी खेती करने की विधियों पर पड़ता है। इनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है:—

क्वारी तथा अगहनी धान के गुण

क्वारी धान करीब ९० दिनों में तैयार हो जाता है। चूँकि इसकी कटाई अक्सर क्वार के महीने में होती है, इसलिये इसे क्वारी धान कहते हैं। इस जाति के धान की मुख्य विशेषता यह है कि यह निर्धारित समय के अन्दर पकता है और इस पर ऋतु का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये इस जाति का धान सिंचाई का साधन होने पर मई में बोकर जुलाई के अन्त तक काटा जा सकता है। इसके बाद उसी खेत में अगस्त में अगहनी धान की रोपाई करके उसे नवम्बर तक काट लेते हैं। इस तरह खरीफ में धान की दो फसलें ले सकते हैं। इस धान की मुख्य किस्में नगीना २२, चाइना १० तथा टाइप १३६, टा० २१ और टा० ३ और चाइना ४ हैं।

इसके विपरीत अगहनी धान मुख्यतः निर्धारित ऋतु के आने पर ही पकता है। इस तरह यदि अगहनी धान मई में ही बोया जाय तो इसकी कटाई नवम्बर में ही होगी जब कि जुलाई में बोकर इसे नवम्बर में काटते हैं और पैदावार एक सी होगी। इस जाति के इस गुण के कारण यदि इसकी बोआई तथा रोपाई जुलाई के बाद की जाती है तो पैदावार पर बुरा असर पड़ता है क्योंकि पौधे को बढ़ने तथा ब्यांत करने का उचित समय

नहीं मिलता और अक्टूबर के अन्त में फूल आना शुरू हो जाता है। अगहनी धान की मुख्य किस्में हैं टाइप १००, ३६, ९ इत्यादि।

दूसरा गुण क्वारी धान के बीज के साथ यह है कि इसके बीज को कटाई के बाद शीघ्र बो सकते हैं क्योंकि इनमें सुसुप्तावस्था नहीं होती। इसके विपरीत अगहनी धान की करीब करीब सभी किस्में कटाई के बाद कुछ दिनों तक नहीं जमतीं जिसे "सुसुप्तावस्था" कहते हैं। इस तरह यह जातियाँ कटाई के बाद शीघ्र नहीं बोई जा सकती हैं।

क्वारी धान की फसल करीब ९० दिनों में होती है तथा अगहनी धान करीब १५० दिनों में तैयार होता है। इस तरह क्वारी धान जल्दी पकता है। इसे काटकर रबी की फसल आसानी से ली जा सकती है।

क्वारी धान, अगहनी धान की अपेक्षा हल्की मिट्टी में हो सकता है तथा उसे अगहनी धान की तरह पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन दोनों जातियों के धान की खेती करीब-करीब एक ही ढंग से की जाती है। क्वारी धान छिटकवां या हल के पीछे भी बोया जाता है लेकिन अगहनी धान की केवल रोपाई ही की जाती है।

क्वारी धान की खेती कुछ स्थानों में कुछ भिन्न ढंगों से होती है जिनका संक्षिप्त वर्णन आगे है :—

क्वारी धान की खेती

सिंचाई का पूर्ण साधन न होने पर इसे ज्यादातर वर्षा शुरू होने पर छिटकवां बोते हैं। जहां सिंचाई के साधन हैं वहां इनकी बेड़ जून में डाल देते हैं और वर्षा शुरू होते ही रोपाई कर देते हैं। यदि अगहनी धान की तरह क्वारी धान की बेड़न रोपाई के लिये वर्षा शुरू होने पर डाली जाय तो उधर फसल कुछ देर में तैयार होगी जिससे रबी की फसल उन खेतों में बोने में देर हो जायेगी जिसका पैदावार पर बुरा असर पड़ेगा। इसलिये जहां सिंचाई के साधन नहीं है, किसान छिटकवां या यदि परिस्थिति अनुकूल है तो हल के पीछे बोते हैं।

छिटकवां ढंग से किसान करीब ३० से ४० सेर बीज फी एकड़ बोता है। बोने के करीब १५-२० दिनों के बाद खड़ी फसल की जुताई कर उसमें तीन चार पाटा चला देता है। उसके बाद फसल की निराई गोड़ाई की कोई विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसे खेत की पैदावार छिटकवां बोकर न जोताई करने की अपेक्षा करीब ड्योढ़ा ज्यादा होती है।

क्वारी धान को किसान धान कहते हैं और अगहनी को जड़हन कहते हैं। खड़े धान को जोतने से अच्छी पैदावार का प्रमाण पुरानी कहावतों से भी मिलता है। प्रसिद्ध कृषि पंडित घाघ की कहावत है कि "गेहूँ बाहें—धान

बिदाहैं" यानी गेहूँ की पैदावार खेत को जोत कर तैयार करने से होती है तथा धान की पैदावार उसे बिदहने से होती है।

दोनों विधियों से बोये गये खेतों की पैदावार का अन्तर निम्न बातों से हो सकता है:—

१. जुताई से धान की बिदहनी हो जाती है जिससे पौधे घने नहीं रह जाते। इस प्रकार सबको धूप, हवा तथा खाद पदार्थ ठीक से मिलता है।

२. जुताई से मिट्टी खुल जाती है जिससे जड़ों को हवा तथा धूप लग जाती है। मिट्टी की पानी रोकने की शक्ति बढ़ जाती है।

३. जुताई से पौधों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ जाती है जिससे ब्यांत में मदद मिलती है।

४. जुताई से जड़ों का छंटाव हो जाता है जिससे पौधे को कुछ फायदे होते हैं जो रोपाई से होते हैं।

५. जुताई तथा पाटा चलाने से मजबूत पौधे रह जाते हैं जो बाद में खूब बढ़ते तथा ब्यांत करते हैं।

६. जुताई से कुछ खरपतवार उखड़ कर नष्ट हो जाते हैं तथा पाटा करते समय मुलायम खरपतवार रगड़ कर नष्ट हो जाते हैं। इससे निकाई की कम जरूरत पड़ती है।

७. बीमारी के कीड़े जो पत्तियों या जड़ों में अंडे दिये रहते हैं, जुताई तथा पाटा से नष्ट हो जाते हैं। इस तरह बीमारी या कीड़े कम लगते हैं।

अगहनी धान की खेती की विधि में कोई अन्तर नहीं है। करीब-करीब सभी किसान बेड़ बोकर रोपाई करते हैं।

इस प्रदेश में धान को सबसे ज्यादा नुकसान गंधी मक्खी से होता है। यह मक्खी जब धान दूधिया अवस्था में रहता है तो बाल के डंठल के रस को तथा दाने के दूध को चूस लेती है जिससे उसके अन्दर कुछ नहीं रह जाता।

यह मक्खी हरा लिए भूरे रंग की होती है। वर्षा शुरू होते ही अन्डा देना शुरू करती है। बच्चे २०-३० दिनों में जवान हो जाते हैं और ४५ से ६० दिनों तक जीवित रहते हैं। इस तरह मध्य सितम्बर तक इनकी ३-४ पीढ़ी तैयार हो जाती है। इस समय इनकी संख्या बहुत ज्यादा हो जाती है। जो धान इस समय दूधिया अवस्था में होते हैं उनका सबसे ज्यादा नुकसान होता है। यदि क्वारी धान की बोआई में देर हो जाती है तो इस मक्खी से बहुत नुकसान होता है।

अगहनी धान नवम्बर में दूधिया अवस्था में आता है जब कि कुछ ठंडक पड़ना शुरू हो जाती है, इससे गंधी की संख्या बहुत कम हो जाती है। इसलिये इसका नुकसान अपेक्षाकृत बहुत कम होता है।

—o—



रेशे की नई फसलों में-'फ्लैक्स'

लक्ष्मी प्रकाश

उत्तर प्रदेश में बहुत सी रेशे वाली फसलें पाई जाती हैं जिनका यदि सही रूप से प्रचार कर उनसे रेशा प्राप्त करने के साधनों को कृषकों तक पहुँचाया जा सके तो निःसंदेह देश और किसान दोनों की आर्थिक स्थिति पर्याप्त मात्रा में सुधर सकती है। इस क्षेत्र में दुर्भाग्यवश अब तक किन्हीं विशेष कारणों से इस सम्बंध में कोई विशेष कार्य न हो सका। पर देश की इस बदलती हुई आर्थिक स्थिति को देखते हुए एवं "आवश्यकता आविष्कार की जननी है" के आधार पर अब इन समस्याओं को भी भुलाया नहीं जा सकता। इन्हें हल करने के लिये कृषि एवं औद्योगिक विकास विभाग दोनों को मिलकर इस बात का प्रयास करना होगा कि इनका समुचित एवं सही मात्रा में विकास हो सके जिससे प्रदेश के किसान ज्यादा से ज्यादा लाभ उठा सकें।

उत्तर प्रदेश के लिये यह भी एक बड़े सौभाग्य की बात है कि उसे विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के साथ साथ विभिन्न प्रकार की जलवायु भी प्राप्त है।

तराई वाले क्षेत्रों में जूट का विकास तो किया ही जा रहा है। वाराणसी, प्रतापगढ़ एवं इलाहाबाद के क्षेत्रों में सनई की भी खेती

होती है जिसके रेशे से प्रदेश को काफी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त हो जाती है। अतः इस फसल का भी अत्यधिक मात्रा में प्रचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

रेशे वाली फसलों में पटुवा या पटसन भी अपने प्रदेश में काफी मात्रा में पैदा किया जा रहा है। इसकी खेती उन्नतिशील ढंग से पूर्वी क्षेत्रों में गोंडा, बहराइच, फैजाबाद, सुल्तानपुर और पश्चिमी क्षेत्रों में बरेली, रामपुर, मुरादाबाद आदि जिलों में बड़ी सफलतापूर्वक की जा सकती है। जूट की भांति पटसन की खेती में भी विशेष ध्यान इसके रेशा निकालने की विधि ही पर रखना पड़ता है।

फ्लैक्स—प्रदेश के बहुत से भागों में अलसी की खेती की जा रही है। यह एक ऐसी फसल है जिसके दानों से तेल निकाल कर उसके डंठलों का भी प्रयोग कर सकते हैं। हमारा किसान अब तक इन डंठलों को बेकार समझ कर फेंक देता है जिसे हम उसका दुर्भाग्य ही कहेंगे क्योंकि वह अब तक यह नहीं जानता कि जिसे वह बेकार समझ कर फेंक देता है, उससे ही एक ऐसा रेशा प्राप्त किया जा सकता है जिसको बाहर से मंगाने के लिये हमें अपने देश की एक बहुत बड़ी धन राशि प्रति वर्ष विदेशों को देनी पड़ती है।

अब तक अलसी की जो किस्में बोई जा रही हैं उनमें केवल इस बात का ही ध्यान दिया गया है कि उनसे कितने प्रतिशत तेल प्राप्त होता है परन्तु जिस समय हमारे अनुसंधान क्षेत्र में कार्यकर्ता अलसी के कुछ ऐसे बीजों को उत्पन्न कर किसानों तक पहुँचा देंगे जिनसे पर्याप्त मात्रा में बीज मिलने के साथ साथ उत्तम श्रेणी का रेशा भी प्राप्त होने लगे तो उस समय इस समस्या का पूर्ण-रूपेण हल हो जायेगा।

प्रस्तुत लेख में अलसी की एक ऐसी ही जाति का उल्लेख किया जा रहा है जिसे 'फ्लैक्स' कहते हैं। इसकी खेती हालैण्ड, मिस्र आदि देशों में विशेष रूप से की जा रही है। प्रदर्शन के तौर पर इस वर्ष अपने प्रदेश में भी इसे उन्नाव और लखीमपुर जिलों में बोया गया था। यह प्रदर्शन काफी सफल रहे जिससे पूर्ण आशा है कि निकट भविष्य में हम लोग इसका प्रचलन अपने प्रदेश में भी बड़ी सफलतापूर्वक कर सकेंगे।

जलवायु:—इसके लिये सम जलवायु की आवश्यकता होती है। यह प्रायः सभी प्रकार की भूमियों पर जहाँ नमी काफी मात्रा में हो, पैदा की जा सकती है पर चिकनी दूमट जमीनें इसके लिये विशेष उपयुक्त समझी जाती हैं। जिन क्षेत्रों में गेहूं पैदा किया जा सकता है उनमें यह बड़ी सुगमता से हो सकती है।

खेत की तैयारी----

इसकी उपज पूर्णतया खेत की तैयारी एवं नमी पर निर्भर करती है। बीज का अंकुर अन्य बीजों के अंकुरों की अपेक्षा अधिक कोमल होता है अतः इसके निकलने के लिये खेत की मिट्टी काफी मुलायम एवं भुरभुरी होनी चाहिये जिससे इसके लिये खेतों की तैयारी बिल्कुल गेहूँ के खेतों के समान होनी चाहिये।

खाद :----

रेशे की अच्छी पैदावार तथा उत्तमता पूर्णतया इसके पतले एवं समान डंठलों की लम्बाई पर निर्भर करती है। अतः फसल को बढ़ने के लिये खेत काफी उर्वर होना चाहिये जिसके लिये खेत की तैयारी करते समय कम से कम ४ से ६ गाड़ी गोबर या कम्पोस्ट की खाद के साथ साथ १ से १। मन प्रति एकड़ के हिसाब से सुपरफास्फेट भी देना आवश्यक होता है।

बीज की मात्रा एवं बोने की विधिः—

फ्लैक्स जाड़े की ऋतु में रबी की फसलों के साथ-साथ बोई जाती है। इसकी बुवाई का सबसे उपयुक्त समय सितम्बर के अन्तिम सप्ताह से लेकर मध्य अक्तूबर तक होता है।

इसके रेशे की उत्तमता इसके लम्बे, पतले एवं समान डंठलों पर ही पूर्णतया निर्भर करती है। साथ ही इसके पौधों में यह भी एक विशेष गुण होता है कि उनमें उनकी प्रारम्भिक अवस्था से ही कामियां (शाखें) फूटने लगती हैं जो उसके रेशे की उत्तमता के दृष्टिकोण से दोष समझा जाता है। अतः इस दोष से बचने के लिये इसे काफी घना बोना चाहिये। ५० से ६० पौंड बीज प्रति एकड़ के हिसाब से उपयुक्त होता है। यों तो इसे पवेरा-हल के पीछे कूंड़ों में बोया जाता है पर उत्तम पैदावार के लिये पंक्तियों से मशीनों द्वारा बोना ही अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है। पंक्तियों में बोने पर उनकी एक दूसरे से दूरी ६ इन्च तथा बीज से बीज की दूरी आधा इन्च से अधिक न होनी चाहिये।

सिंचाई तथा निराई-गुड़ाईः—

फसल की अच्छी बढ़वार के लिये काफी मात्रा में नमी की आवश्यकता होती है। अतः नवम्बर से दिसम्बर तक एक या दो सिंचाइयां कर देनी चाहिये। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में पौधे काफी कमजोर होते हैं अतः उनकी बढ़वार के लिये खेतों में कम से कम एक या दो निराइयां भी जब पौधे ३ इन्च से ४ इन्च तक के हो जायें, तो कर देनी चाहिये।

मिट्टी चढ़ानाः—

फ्लैक्स की खेती का सबसे महत्वपूर्ण अंग उसके पौधों पर उनकी प्रारम्भिक अवस्था

में ही मिट्टी चढ़ाना ह●ा है, इससे एक तो पौधों में कामियां नहीं फूटने पातीं, दूसरे तेज हवा के झकोरों से फसल गिरने नहीं पाती। अतः पहली ही निकाई के साथ-साथ पौधों पर उनकी जड़ों के पास से मिट्टी अवश्य चढ़ा देना चाहिये।

कटाई का समयः—

कटाई का समय क्षेत्र की जलवायु पर निर्भर करता है जिससे इसकी कटाई का ठीक-ठीक समय निर्धारित नहीं किया जा सकता। फिर भी अच्छे किस्म का रेशा प्राप्त करने के लिये पौधों में फल आने के बाद जैसे ही उनके तनों पर जड़ के पास हल्का पीला या भूरापन आने लगे त्यों ही उन्हें जड़ों सहित उखाड़ लेना चाहिये। पौधों को उखाड़ने के बाद उन्हें एक-एक फुट व्यास वाले बंडलों में बांध कर सूखने के लिये खेतों ही में एक दूसरे के सहारे खड़ा कर देना चाहिये। इस प्रकार से जब पौधे पूर्णतया सूख जायें तो उनकी पत्तियों को झाड़ कर रेशा निकालने के लिये इकट्ठा कर लेना चाहिये।

सड़ाना एवं रेशा निकालनाः—

इसकी खेती में उपरोक्त प्रविधियों की अपेक्षा रेशा निकालने ही की क्रिया विशेष महत्वपूर्ण एवं ध्यान देने योग्य होती है। अब तक प्रदेश में इसका प्रचलन न होने के कारण इस संबंध में हम लोग पूर्णतया अनभिज्ञ थे, पर इस वर्ष के प्रयोगों से हम इस निष्कर्ष पर भी पहुँच चुके हैं कि केवल थोड़ा सा ही ध्यान देने मात्र से इससे उत्तम श्रेणी का रेशा भी बड़ी सुगमता से निकाला जा सकता है। यों विदेशों में रेशा निकालने के लिये निम्नांकित विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं:—

१. तालावों में सड़ाकर।

२. ओस में सड़ाकर।

३. रेशा निकालने वाली एक विशेष प्रकार की मशीनों द्वारा।

हमारे लिये उपरोक्त तीनों विधियों में नं० १ की ही क्रिया लाभदायक एवं अनुकूल पड़ती हैं। अतः केवल उसका ही विवेचन किया जा रहा है।

जूट या सन की भांति इसके भी रेशे की सुन्दरता पूर्णतया स्वच्छ एवं बहते हुये पानी पर ही निर्भर करती है जिसके लिये निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहियेः—

१. तालाब का पानी साफ हो।

२. जहां तक हो सके तालाब पक्का हो, यदि पक्के तालाव सुलभ न हों तो रेशे को गंदगी से बचाने के लिये उनमें लकड़ी के तख्ते आदि डाल देना चाहिये।

३. बंडलों को दबाने में सदैव लकड़ी के कुंदों या पत्थरों का ही प्रयोग करना चाहिये।

४. पानी का तापक्रम ८० डि० फै० से ६५ डि० फै० तक का होना चाहिये। इस

तापक्रम पर यह दो से तीन दिन के ही अन्दर अन्दर तैयार हो जाता है। कभी-कभी अनुकूल तापक्रम न मिलने के कारण एक आध दिन अधिक भी लग सकता है।

रेशा जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, लगभग दो से तीन दिन के अन्दर ही अन्दर निकालने योग्य हो जाता है। अतः जब यह पूर्ण निश्चय हो जाय कि रेशा निकालने योग्य हो गया है तो फौरन ही उन बंडलों को पानी में खूब हिला हिला कर साफ करके धूप में सूखने के लिये एक दूसरे के सहारे खड़ा कर देना चाहिये। जब वह पूर्ण रूप से सूख जाय तो निम्नांकित विधि से रेशा निकाल लेना चाहियेः—

सूखे हुये बंडलों को किसी लकड़ी के मोंगरे से हल्के हल्के पीट कर डंठलों को तोड़ देना चाहिये। इससे उनकी कुछ लकड़ियां तो कूटते समय ही अलग हो जाती हैं, शेष को उन्हें झाड़-झाड़ कर निकाल देना चाहिये। इस प्रकार थोड़े से ही परिश्रम से रेशा सुलभ हो जाता है।

रेशा निकालने के लिये यों कुछ साधारण यंत्रों का भी प्रयोग किया जा रहा है। सफलता प्राप्त होते ही उन्हें कृषकों को सुलभ कर दिया जावेगा।

वस्तुओं का निर्माणः—

फ्लैक्स आज अपने निम्नांकित गुणों ही के कारण सारे विश्व के लिये एक आकर्षक वस्तु बन गई हैः—

(१) बीजों से अच्छे किस्म का तेल प्राप्त होता है जो अपने शीघ्र सूखने की विशेषता के कारण अच्छे प्रकार के पेन्ट्स, वार्निश तथ लाइनोलियम एवं छपाई की स्याही आदि बनाने के काम आता है।

(२) पौधों के डंठलों से एक प्रकार का रेशा जिसे लिनेन या क्षुमा कहते हैं, प्राप्त होता है जिससे बहुमूल्य कपड़ा, विभिन्न प्रकार की डोरिया-होज पाइप आदि बनाये जाते हैं।

(३) रेशा निकालने के बाद डंठलों से अनेक प्रकार के बहुमूल्य कागज जैसे नोट छापने के कागज, कार्बन पेपर एवं अन्य दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुएँ आदि बनायी जाती हैं।

आशा है हमारे प्रदेश के कृषक अन्य फसलों की भाँति इसे भी अपना कर अपनी आर्थिक उन्नति करने के साथ साथ देश की भी आर्थिक उन्नति करने में सहायक सिद्ध होंगे।

—०—

बुन्देलखंड की मिट्टियां

चन्द्रपाल गुप्त

बुन्देलखंड में दो प्रकार की मिट्टियां पाई जाती हैं—(१) लाल मिट्टी (२) काली मिट्टी। इनको ३ किस्मों में विभाजित किया गया है, बुन्देलखंड टाइप १, बुन्देलखंड टाइप २ और बुन्देलखंड टाइप ३। इस टाइप ३ को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है टाइप ३ ए और टाइप ३ बी। इन चारों बी० डी० टा० १, बी डी० टा० २, बी० डी० टा० ३ए और बी० डी० टा० ३ बी, के प्रचलित नाम क्रमशः राकड़, पड़वा, कावर और मार हैं। बुन्देली मिट्टी चार प्रकार-राकड़, पड़वा, कावर और मार, की होती है।

राकड़:—यह बलुई पथरीली लाल भूरी मिट्टी है, इसकी परतें बहुत कम हैं। इसमें चार-पांच फीट के अन्दर ही 'पैरेन्ट राक' मिल जाती है।

पड़वा:—यह हल्के लाल भूरे रंग की बलुई दोमट या दोमट मिट्टी है। इसमें चार-पांच फीट की गहराई पर कंकड़ (कैल्शियम कार्बोनेट) की परत पाई जाती है।

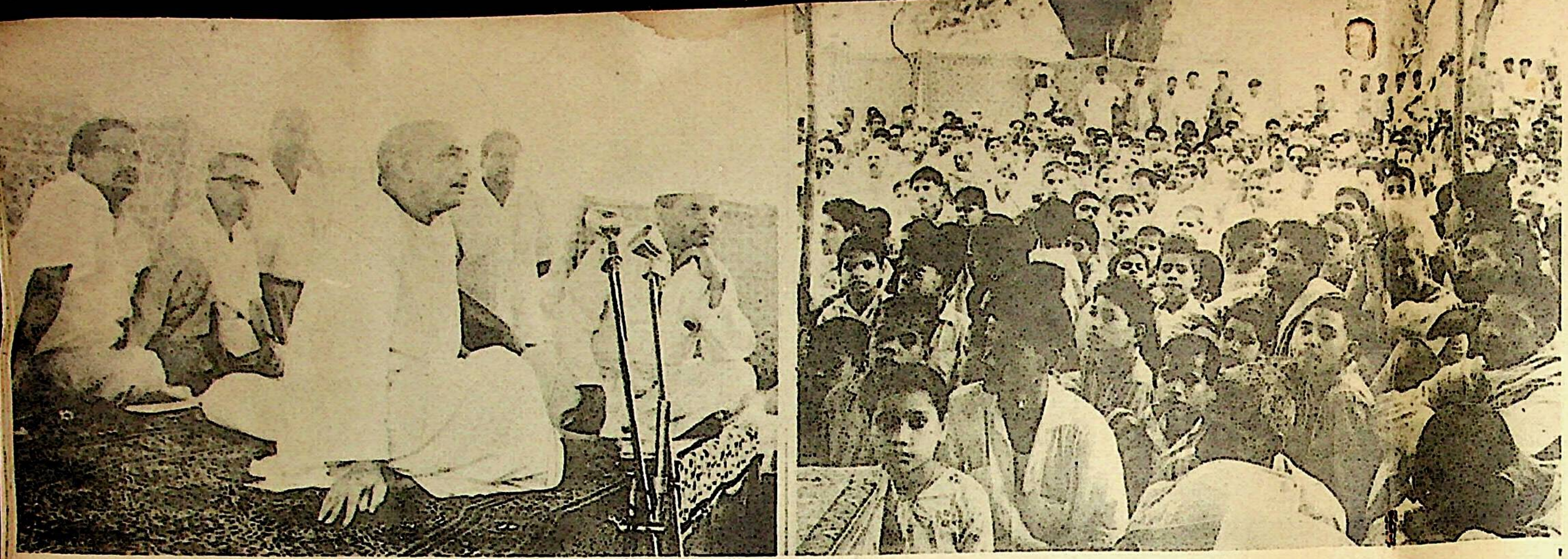
काबर:—यह हल्की काली मिट्टी है। यह भारी-दोमट या मटियार दोमट मिट्टी है। इसमें मार से कम चिकनाहट होती है. इसमें कंकड़ की छर्रियाँ भी पाई जाती हैं।

मार:—यह काली मिट्टी है, यह बहुत भारी और मटियार होती है। इसमें छोटे कंकड़ की छर्रियाँ पाई जाती हैं, यह बहुत चिकनी मिट्टी है, पानी से बहुत शीघ्र गीली और चिपकदार हो जाती है। सूखने पर यह अधिक कड़ी हो जाती है और इसमें बड़ी बड़ी दरारें पड़ जाती हैं जिससे हल चलाना और खेती करना असम्भव सा है, इस कारण इस मिट्टी में ठीक समय पर काम करना ही लाभदायक है।

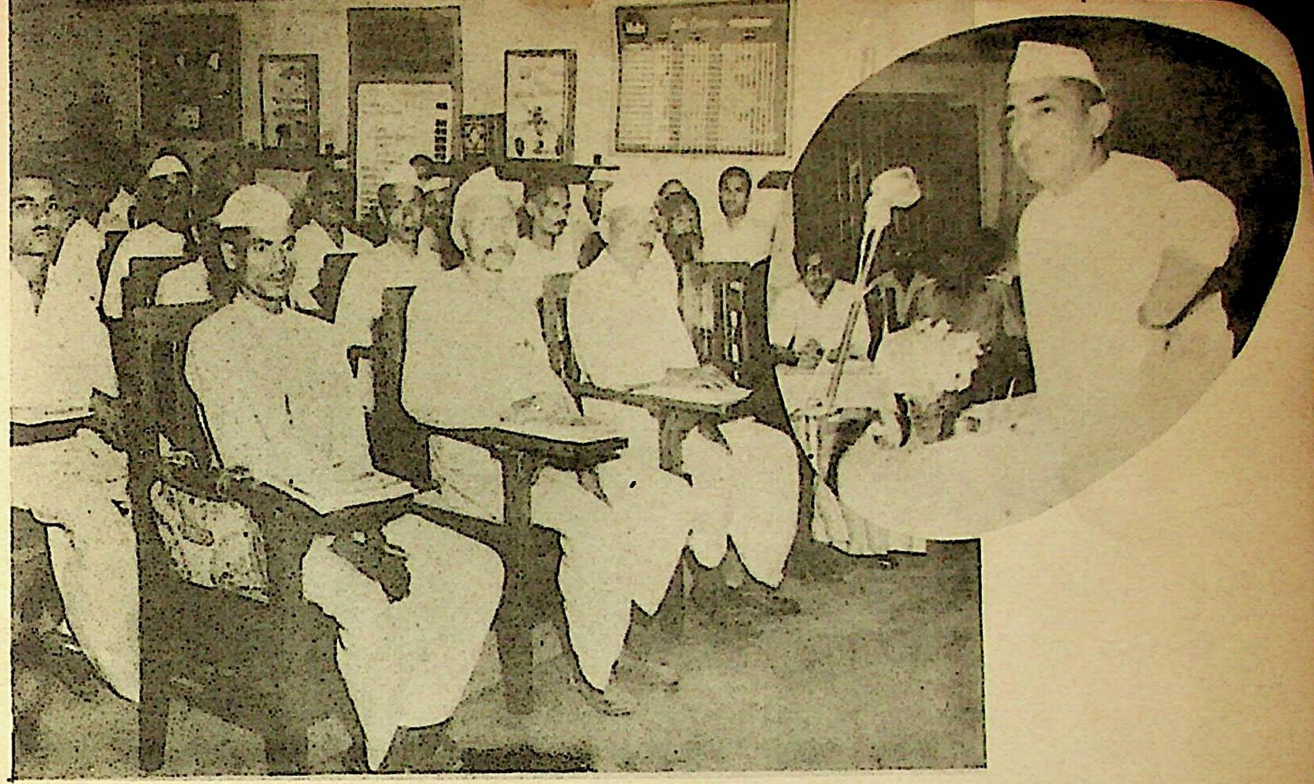
मिट्टी की जांच में 'क्ले' और 'पी एच' का बड़ा महत्व है, मिट्टी में 'क्ले' से पानी रोकने की शक्ति बढ़ जाती है और विनिमेय भस्म (बेसेज) अधिक हो जाते हैं। न्यूट्रल पी एच ७.० है, ६.५ से ७.७ पी एच तक की मिट्टियाँ फसलों के लिए अच्छी हैं, यह कैल्शियम मिट्टियां कहलाती हैं। इनमें ६.८ से ७.४ पी एच की मिट्टी बड़ी उपजाऊ होती है। कैल्शियम मिट्टी ही खेती की मुख्य मिट्टी है, जिसमें पौधों की उपज होती है। पी एच के ६.५ से कम या ७.७ से अधिक होने पर यह कैल्शियम



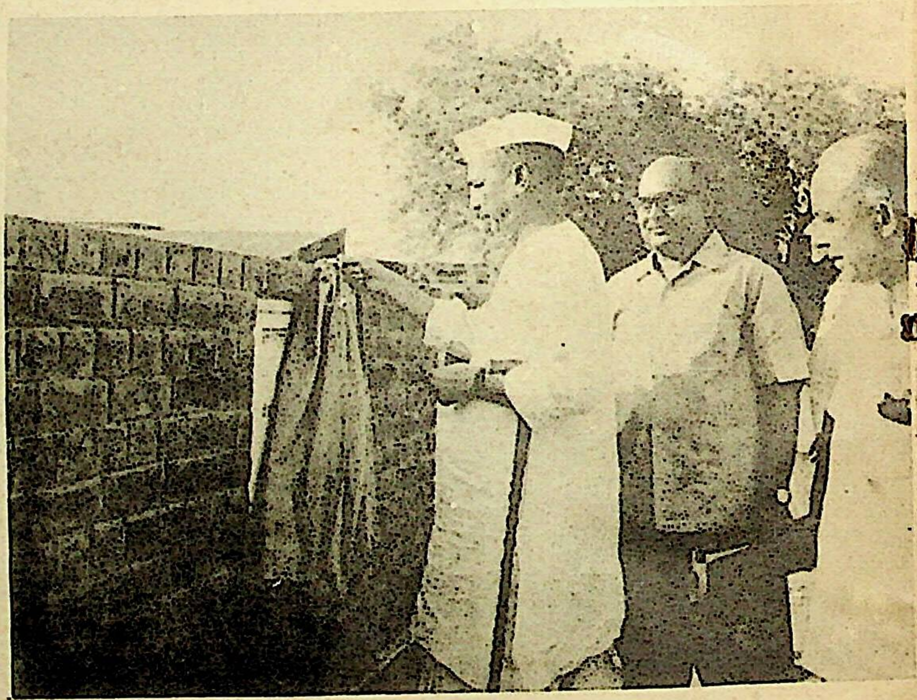
प्रचण्ड धूप और प्रबल लू के थपेड़ों से तप्त धरती की प्यास बुझाकर लहलहाती फसल बोने के लिए प्रयत्नशील किसान।



श्री चरण सिंह, कृषि मंत्री, उत्तर प्रदेश ग्राम चाऊ, जिला अलीगढ़ के किसानों को पैकेज योजना समझाते हुए।



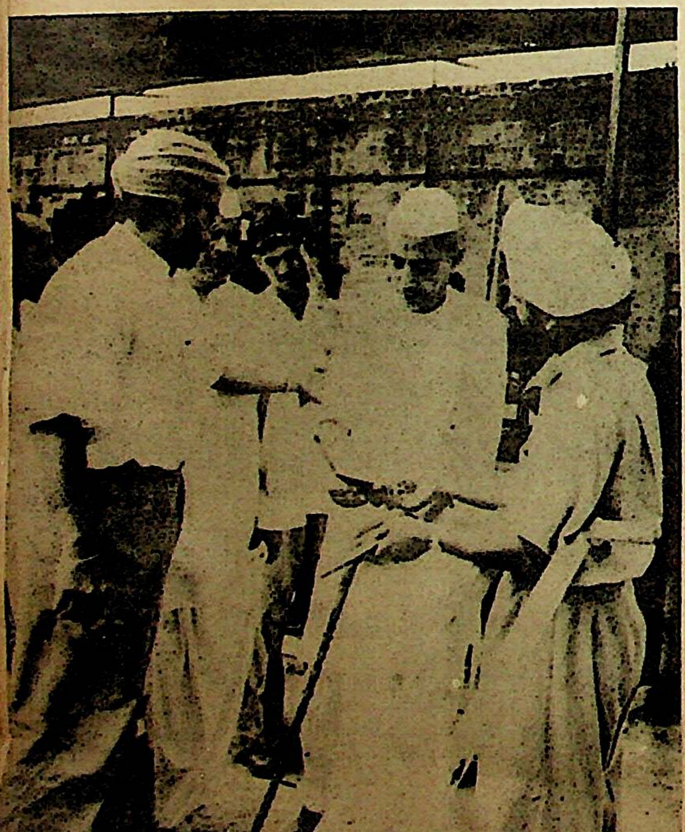
श्री चरण सिंह, कृषि मंत्री, उत्तर प्रदेश, प्रसार एवं प्रशिक्षण केन्द्र, बक्शी का तालाब में भारत दर्शन पर्यटन से लौटे हुए ग्राम सहायकों को सम्बोधित करते हुए।



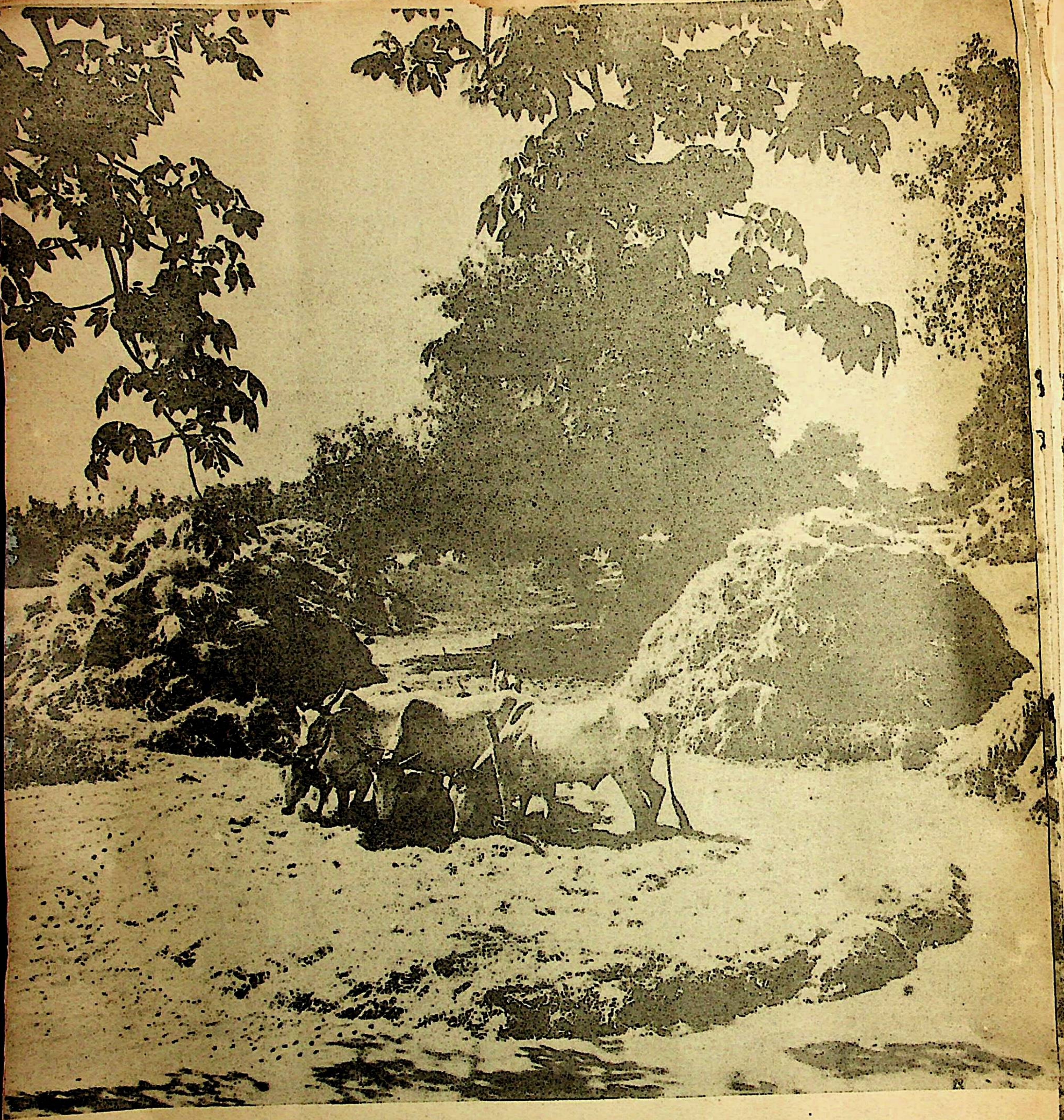
श्री चरण सिंह, सेन्ट्रल डेरी फार्म, अलीगढ़ वेकन फैक्टरी के भवन का शिलान्यास कर रहे हैं।

श्री चरण सिंह, प्रसार एवं प्रशिक्षण केन्द्र, बक्शी का तालाब में प्रमाण पत्र प्रदान करते हुए।





कृषि मंत्री जी प्रोजेक्ट कार्यालय, अलीगढ़ के कृषि यंत्र कारखाने द्वारा निर्मित उन्नत कृषि यंत्रों का निरीक्षण कर रहे हैं।



रवी की फसलें कटने के बाद खलिहानों में नवजीवन का संचार हो जाता है। फसलों की मड़ाई का यह दृश्य किसान को अन्न प्राप्ति की नई आशा से भावविभोर कर देता है।

[पृष्ठ १८ का शेष]

सारिणी नं० ३ 'एन' और 'पी' से लाभ बताती है। पी का लाभ दूसरे व तीसरे वर्षों की फसल पर भी होता है और खेत का उपजाऊपन बना रहता है। यह खाद-प्रयोग समंक स्तर पर राजकीय कृषि प्रक्षेत्रों पर भी किए गए हैं। इन से भी एन पी से लाभ प्रदर्शित है (वाल्यूम आफ स्वायल सर्वे एन्ड स्वायल वर्क इन उत्तर प्रदेश)। इनमें से एक प्रयोग "भरारी फार्म पर खाद प्रयोग" में १९५६-५७ (चन्द्र पाल गुप्त द्वारा) "विकास किरण" चिरगांव, झांसी, जुलाई, १९५८ पृष्ठ ४१ पर एन पी से लाभ प्रदर्शित है।

हरी और जीवांश (वनस्पति) खाद का प्रयोग रासायनिक खाद के साथ खेत में जीवांश पदार्थ को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। धान पर किए गए प्रयोगों में हरी खाद-ढैंचा, रासायनिक खाद-अमोनियम सल्फेट और जीवाँश खाद-गोबर की खाद (फार्म याड मेन्योर) से पृथक-पृथक जो प्रतिक्रिया जीवाँश पदार्थ पर हुई (विभागीय बुलेटिन्स नं० १०४ में—आर० आर० अग्रवाल, मान सिंह, चन्द्र पाल द्वारा) उसे निम्न सारिणी नं० ४ में प्रदर्शित किया गया है। हरी खाद देने से खेत में जीवांश पदार्थ अधिक बना रहता है। दूसरा नं० जीवांश खाद का है लेकिन रासायनिक खाद देने से जीवांश पदार्थ बिना खाद दिए गए खेत के जीवांश पदार्थ से भी कम है।

× × × ×

सारिणी नं० ४

विवरण	ढैंचा	अमोनियम सल्फेट	गोबर की खाद	बिना खाद
औसत	०.९१७	०.८५३	०.८८५	०.८७८

बुन्देलखंड की मिट्टियों के उपरोक्त विवरण से हमें खेत की मिट्टी और इसका उपजाऊपन और इसमें खाद–पानी की मात्रा का ज्ञान होता है। अपने खेत की मिट्टी का ज्ञान रखते हुए आधुनिक प्रकार से खाद देकर समुचित सिंचाई का प्रबन्ध करके हम अपनी उपज को बढ़ा सकते हैं और अपनी खेती की उर्वरा शक्ति को बनाए रख सकते हैं। साथ ही हमको यह न भूलना चाहिए कि अच्छे बीज से फसल अच्छी और उपज अधिक होती है। जुताई गुड़ाई भी उपज बढ़ाने का एक अंग है, इससे खेत में नमी बनी रहती है और लाभकारी कीटाणु की प्रतिक्रिया बढ़ जाती है जो खेत में प्राकृतिक नत्रजन की वृद्धि करती है जिससे उपज बढ़ जाती है।

\+ + + +

—०—

फसल नियोजन

रामपाल सिंह

भारतवर्ष या अन्य किसी भी देश में जहां फसलों का उत्पादन सम्पूर्ण आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर पाता वहाँ उत्पादन प्रणाली को श्रृंखलावद्ध करने की आवश्यकता होती है। फसल नियोजन का अभिप्राय यह है कि देश की पूरी आवश्यकताओं को सामने रख कर हम ऐसी योजना बनायें कि हमारी आवश्यकताओं की पूरी पूरी पूर्ति हो सके। हमें अपनी जन संख्या को पूरा भोजन देने का प्रयत्न करना है तथा कारखानों को कच्चा माल देना है। ऐसी फसलों का भी उत्पादन करना है जिनको कि हम वाहर भेजकर विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकें।

इन तीन आधारभूत वातों के साथ इसका भी ध्यान रखें कि हमारी फसलें जलवायु और भूमि के अनुकूल ही वोई जायं जिससे कृषकों को पर्याप्त आय मिल सके और उनका जीवन स्तर ऊंचा उठ सके। यह तभी सम्भव है जब कृषक विधिवत निर्धारित फसलों का अधिकाधिक उत्पादन करें और राज्य उनके द्वारा उत्पन्न की गई सामग्रियों को उचित मूल्य पर विकवाये तथा फसल उत्पादन के लिये आवश्यक सामग्रियों को सरलता पूर्वक उचित मूल्य पर जुटवाने का समुचित प्रवन्ध हो जाय।

फसल नियोजन के विना कुछ फसलों का उत्पादन कृषक कम करते हैं और कुछ का उत्पादन आवश्यकता की अपेक्षा अधिक हो जाता है। जव किसी वस्तु की मात्रा अधिक हो जाती है तो उसकी मांग घट जाती है और मूल्य भी कम हो जाता है जिन्हें उगाना कृषकों के लिए अलाभकारी हो जाता है। जो वस्तुयें कम पैदा होती हैं उनकी मांग वढ़ती है और साथ ही मूल्य भी। कृषक उनको उगाने में लग जाते हैं और अधिक पूंजी लगाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप उन वस्तुओं का उत्पादन इतना अधिक हो जाता है कि उनकी दरें वहुत गिर जाती हैं तथा प्रति मन आय कम हो जाती है। फिर उन फसलों को कम उत्पन्न करने के लिए कृषक वाध्य हो जाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप उनका उत्पादन फिर कम हो जाता है और आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती जिसके कारण फिर मूल्य वढ़ जाता है।

इस प्रकार फसलों को अधिक और कम बोने का अनियोजित चक्र बिना रोक टोक के चलता रहता है। इसी का परिणाम है कि कृषक यह कहते सुने गये हैं कि वे जिस वस्तु का उत्पादन मन लगाकर करते हैं उसी का मूल्य गिर जाता है। यह बात वास्तव में ठीक है क्यों कि फसल उगाने का क्रम व उगाई जाने वाली फसलें शीघ्रता से नहीं बदली जा सकतीं। इसीलिए नियोजन के युग में सर्वांगीण नियोजित विकास आवश्यक हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप फसल नियोजन का भी अपना महत्व बढ़ गया है।

इस पहलू पर अभी तक गम्भीर विचार नहीं हो पाये हैं। दो पंच वर्षीय योजनाओं के पश्चात् यह नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि इस पर पूर्ण विचार किया जाय और इसको विधिवत् ढंग से वर्तमान स्थितियों के अनुसार अपनाया जाय।

फसल नियोजन से पहले सर्वेक्षण के लिये हमें विभिन्न आंकड़ों पर विचार करने की आवश्यकता होगी तभी समस्या और उसका निराकरण करने के उपाय ठीक समझ में आयेंगे। जैसे निम्नांकित की जानकारी:—

१. कृषि योग्य क्षेत्र

२. सिंचित क्षेत्र

३. विभिन्न फसलों के अन्तर्गत पृथक-पृथक कुल क्षेत्र

४. जन संख्या जिसके हेतु भोजन की व्यवस्था करनी है।

५. उसकी विभिन्न खास प्रवृत्तियां और उनके अनुसार आवश्यक सामग्रियां—

क. गल्ला हेतु

ख. दाल हेतु

ग. तरकारियों हेतु

घ. फलों हेतु

ङ. शकर हेतु

च. खाद्य तेलों हेतु

छ. अन्य

६. चारे तथा दाने की घरेलू पशुओं तथा पक्षियों हेतु आवश्यकतायें।

७. निर्यात द्वारा अर्जित किया जाने वाला धन तथा मुख्य-मुख्य फसलें जिनका निर्यात किया जा सकता है।

८. उपरोक्त के साथ-साथ जलवायु, भूमि का ज्ञान भी आवश्यक है।

९. इतना ही नहीं वरन् निम्नांकित उद्देश्य के लिए भण्डारों की वर्तमान स्थिति का ज्ञान भी आवश्यक है:—

क. अन्न की फसलों हेतु

ख. वाणिज्य की फसलों हेतु

ग. अन्य फसलों हेतु

१०. स्थान विशेष के निवासियों के सामाजिक जीवन का ज्ञान।

उपज सम्बन्धी उपरोक्त बातों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त सूत, शकर, तेल, तम्बाकू व अन्य कृषि उपज के कच्चे माल सम्बन्धी कारखानों की वर्तमान स्थिति के विषय में निकट भविष्य सम्बन्धी योजनाओं का पूरा पूरा ज्ञान होना आवश्यक है।

जब हमारे पास सब आंकड़े हो जायेंगे तभी हम आवश्यकताओं का ज्ञान कर सकेंगे और उसी के अनुसार वास्तविक फसल योजना निर्धारित सिद्धान्तों के आधार पर बना सकेंगे।

हमें यह भी विदित है कि हमारी जन संख्या किस तेजी से बढ़ रही है। उसका भी ध्यान हमें फसल नियोजन में रखना पड़ेगा जिससे व्यक्तियों को संतुलित भोजन हेतु आवश्यक सामग्रियाँ प्राप्त हो सकें।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए हर प्रदेश के लिए फसल नियोजन करना आवश्यक है। उस नीति को स्थानीय जलवायु तथा भूमि के अनुसार जिला स्तर पर स्पष्ट रूप से कार्यान्वित करवाना आवश्यक है। जिले की योजना कार्यान्वित करने का आधार उसके विकास खंड व गाँव की योजनायें होंगी। अन्त में प्रत्येक कृषक को बताना होगा कि वे अपनी भूमि का कितना क्षेत्रफल किस उपयोग में लायें जिसके लिये स्थानीय ज्ञान व परिस्थितियों की विशेष आवश्यकता होगी। इसलिए यदि ऐसे आंकड़ों में स्थानीय जानकारी के आधार पर कुछ परिवर्तन भी करना पड़े तो वह उचित ही होगा। उसी से यह निर्णय पर पहुँचना सम्भव होगा कि किस वस्तु की कितनी आवश्यकता है और उसी के अनुसार उनका उत्पादन भी करना होगा।

हमारी कृषि के जो मौलिक ढंग हैं उन्हें भी हमें इस दृष्टिकोण से देखना होगा कि उनमें क्या-क्या परिवर्तन लाये जाना आवश्यक है जिससे कि परिवर्तित समय और परिस्थितियों में उनका पूरा पूरा लाभ कृषि उत्पादन के लिए उठाया जा सके और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कृषि के आधुनिक ढंग भी अपनाने होंगे जिनके द्वारा कृषकों के फसल उत्पादन सम्बन्धी मूल समस्याओं का निवारण किया जा सके।

सर्व प्रथम हमें राष्ट्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिये क्योंकि भूमि राष्ट्र की धरोहर के रूप में ही कृषकों के पास है इसलिए उसकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखना नितान्त आवश्यक है। वैसे तो उद्योग के लिए आवश्यक कच्चा माल विदेशी मुद्रा की पूर्ति तथा नागरिकों की क्षुधा शान्ति हेतु सामग्रियाँ ही राष्ट्र अपने कृषकों के द्वारा उपलब्ध करवाना चाहता है। परन्तु इस समय विशेष बल अन्तिम दो पर ही है, क्योंकि राष्ट्र के शीघ्रता से विकास हेतु आधारभूत

पृथक वर्ग की फसलों के लिए पृथक पृथक होती है परन्तु शकर, सब्जियाँ, कन्द आदि में यह सीमा अधिक दूर होती है। जैसे-एक एकड़ में गुड़ २५० से ३०० मन तक हो जाता है।

एक एकड़ में गाजर, पातगोभी, अरवी आदि ४००-५०० मन हो जाती है। एक एकड़ में आलू ७००-८०० मन हो जाता है।

४—चुनी हुई फसलें आपस में एक दूसरे की पूरक हों:—उगाई जाने वाली अधिकांश अथवा सभी फसलें यदि एक जैसी जलवायु चाहने के कारण एक ही समय में बोई जाने वाली होंगी तो उपयुक्त न होगा। एक सी प्रवृत्ति के कारण यदि एक प्रकार ही खाद्य तत्वों की उनकी मूल आवश्यकतायें हों, एक सी जड़ें होने के कारण वे एक ही गहराई से अपनी खूराक लेने वाली हों, तब उपलब्ध साधनों का पूरा पूरा प्रयोग उनके फसलों के उत्पन्न करने में नहीं किया जा सकता है। साथ ही भूमि की उर्वराशक्ति के ह्रास की सम्भावना होगी। फसल उत्पादन में लगे हुए मजदूरों से पूरे वर्ष काम लेना कठिन हो जायगा। फसलों को बीमारियों तथा कीटाणुओं से रक्षा करना ही कठिन हो जायगा। उनके उगाने के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होगी। इतना ही नहीं उनसे प्राप्त होने वाली आय भी एक समय होगी जिसके कारण लागत पूंजी अधिक हो जयगी जिस पर ब्याज अधिक देना पड़ेगा।

अतः जो भी फसलें बोने के लिए प्रयोग की जांय, उनका व उनकी जातियों का चुनाव इस प्रकार किया जाय कि वे आपस में स्पर्धक न होकर, एक दूसरे की पूरक हों जैसे—मक्का, आलू, धान व बरसीम आदि।

५--जिनमें विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हो

क. पारिवारिक आवश्यकतायें:—

मनुष्य की अपनी पांच मुख्य आवश्यकतायें होती हैं जिन्हें प्रत्येक कृषक को पूरा करने के लिये उचित फसलों को चुनना चाहिए जैसे—

अन्न सम्बन्धी
तरकारी सम्बन्धी
शक्कर सम्बन्धी
वस्त्र सम्बन्धी
भोजन बनाने हेतु ईंधन सम्बन्धी

क्योंकि विशेष परिस्थितियों को छोड़ कर कृषि ऐसा व्यवसाय है जिसमें कृषक को यदि अपने ६ उपज पदार्थ बेचकर भी ४ आवश्यक पदार्थ क्रय करने पड़ जांय तो आय कम और व्यय अधिक हो जाने की सम्भा-

वनायें हो जाती हैं। इसीलिए कृषकों को अपने खाने के सामान उत्पन्न करना उचित नहीं वरन् आवश्यक है।

ख. पशुओं की आवश्यकतायें:— भारतवर्ष में धन का अभाव तथा औसत जोत कम होने के कारण बैलों की शक्ति द्वारा ही कृषि की जाती है जिन्हें उत्पन्न करने के लिए गायों का रखना भी आवश्यक हो जाता है। परिणाम स्वरूप प्रत्येक कृषक परिवार में कम से कम तीन चार पशु पाये जाना स्वाभाविक ही है। इन पशुओं की भी कुछ आवश्यकतायें होती हैं जिनकी पूर्ति भी उत्पन्न की गई फसलों द्वारा होनी चाहिये। जैसे:—

चारे सम्बन्धी
दाने सम्बन्धी
खली सम्बन्धी।

स--भूमि की आवश्यकतायें:— ठोस एवं सफल नियोजन उसी समय चल सकता है जब कि भूमि की उर्वरा शक्ति को न केवल स्थिर रक्खा जाय अपितु उसमें बढ़ोतरी भी होती रहना आवश्यक है। इसलिए हमारे फसलों के उत्पादन कार्यक्रम में उनका चयन इस उद्देश्य की पूर्ति अवश्य करता हो जिसके लिए निम्नांकित आधार होने हैं:—

१. भूमि बेकार (सिक) न हो जाय। इसके लिए भूमि को परती छोड़ने की प्रथा प्राचीन काल से हमारे देश में चली आई है, इससे भूमि को आराम मिल जाता है और उसकी उर्वरा शक्ति पूरी हो जाती है। परन्तु अब जनसंख्या बढ़ने के फलस्वरूप भूमि की मांग अधिक बढ़ गई है जिससे यह प्रथा नष्ट हो गई है। इसको पुनर्जीवित करना आवश्यक नहीं क्योंकि हमारे राष्ट्र नेता का मनुष्यों के लिये "आराम हराम है" का संदेश है। इसलिए भूमि को आराम देने का प्रश्न ही नहीं आता, परन्तु इसके पीछे जो उद्देश्य है, उसकी पूर्ति करना आवश्यक है। इसके लिए हमें वैज्ञानिक ढंगों से भूमि की समय-समय पर जांच करके उसमें संतुलित आवश्यक खाद देकर सूर्य के प्रकाश का पूर्ण लाभ उठाने हेतु गहरी जोताई करके तथा पूरक फसलें उगाकर भूमि को वेकार नहीं होने देना है।

२. भूमि को स्वायल सिकनेस से बचाने के बाद उसकी उर्वरा शक्ति को नष्ट होने से बचाने के लिए फसलों के हेर-फेर में दालों का प्रयोग भी भारतीय किसान बहुत प्राचीन काल से करते आये हैं। फसल उगाने की प्रणाली में इस प्रथा को स्थाई स्थान देने के लिए भारतीय भोजन में दालों का विशेष स्थान रखा गया है क्योंकि दाल वाली फसलों से मनुष्य के लिए दाल, पशुओं के लिए दाना तथा उनके पौधों की जड़ों में रहने वाले कीटाणुओं द्वारा संग्रह की गई नत्रजन

पृष्ठ ३२ पर वर्णित ५ एकड़ की जोत में जो नियोजित फसलें उगाई जायेंगी उनकी पैदावार, व्यय सम्बन्धी ब्यौरा निम्नांकित है:—

	फसल	क्षेत्रफल (एकड़ में)	सम्भावित उपज (मनों में)	सम्भावित क्रय हेतु उपज से आय (रु० में)	उर्वरक सम्बन्धी व्यय (पौंड में) नत्रजनीय	फास्फेट	विशेष विवरण
	१	२	३	४	५	६	७
रबी	गेहूँ	.८२३	२०	—	१६०	१००	पशुओं के गोबर, खर पतवार, झाड़न बुहारन आदि से कम्पोस्ट तैयार किया [illegible] के रूप में होगा।
	चना	.२०४	५	—	—	३०	
	आलू	.२०४	८०	७०म.८से. ५५६	१२०	६०	
	फूलगोभी	.२०४	२,००० फूल	१,८०० फूल ३०० रु० के	५०	—	
	गाजर	.२०४	४०	३० २००	५०	३०	
	प्याज	.२०४	४०	३५ ३५०	१००	३०	
	मटर	.८२३	२० मन फली ८ मन दाना	१८ १८० ५ ६०	—	१२०	
	मेंथी	.४०८	२० मन हरी ३ मन दाना			५०	
	बरसीम	.४०८	१००			१००	
	निलहन	.८२३	१५	१५ २००	८०		
	योग	४.२८५	—	१,६५०	५६०	५२०	
खरीफ	धान	.४०८	१०	५ ६०	८०	५०	
	मक्का	.२०४	६	४ ४८	१२०	५०	
	ज्वार	१.६४६	१५० हरा ५० सूखा	२० २४०	१५०		
	शकरकन्द	.२०४	४०	३० २४०	६०	३०	
	भिन्डी	.२०४	१५	१२ २४०	४०		
	लोबिया	.४०८	१० फली २ दाना	८ ८० ८ १६०		६० १६०	
	मूंग	१.०२७	१० फली				
	अरहर	.८३२	८	७ १००		१२५	
	मूंगफली	.८३२	१६	१५ ३००		१००	
	गन्ना	.८३२	८००	६०० ६७२	५००	२००	
	कपास	.४०८	४	३ ९०	६०		
	योग	७.००५		२,५३०	१,०१०	७७५	
	कुल योग	११.२९०		४,४८०	१,५७०	१,२९५	

नोटः—पृष्ठ ३३ की तालिका में जो उपज के आँकड़े हैं उनमें से २० मन गेहूं, ३ मन चना, ५ मन धान, २ मन मक्का, २ मन लोविया, परिवार के व्यक्तियों और बीज के लिए आवश्यक होंगे।

१ मन चना, २ मन मूंग, १ मन अरहर दाल के रूप में प्रयोग की जायगी।

जानवरों हेतु २ मन चना, ३ मन मटर, ३ मन मेथी, भूसा, बरसीम, चरी का प्रयोग चारे व दाने के लिये किया जायगा। इसके अतिरिक्त कुछ चना, जौ और ग्वार क्रय भी करना पड़ेगा।

रुपये के रूप में होने वाली आय जो उपज की विक्री से होगी, रु० ४,४८० आई है जिसमें से रु०३९३.८६ नये पैसे उर्वरकों की कीमत निकाल कर रु० ४०८६.१४ नये पैसे आय के रूप में होंगे जिसमें से क्रय करने वाले बीज, सिंचाई, लगान आदि का भुगतान करने में व्यय किये जायेंगे।

सर्वेक्षण के परिणाम स्वरूप तथा फसल नियोजन के सिद्धान्तों के अनुसार चलने से कितना लाभ हो सकेगा (रु० ८०० प्रति एकड़) यह अनुमान भली प्रकार उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है। इसकी उपयोगिता तभी सिद्ध होगी जब कि स्थानीय कृषक इसके अनुसार चलकर अपनी फसल उत्पादन प्रणाली में सब्जियों के उत्पन्न करने को वांछित स्थान देने लगेंगे। इससे कृषक न केवल स्वयं ही धन प्राप्त करेंगे अपितु राष्ट्र की धरोहर भूमि की उर्वरा शक्ति में भी सुधार होगा और स्थानीय जनता को सब्जियां उपलब्ध होंगी।

उपसंहार

उपरोक्त उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि एक छोटा कृषक भी नियोजित ढंग से फसल उत्पन्न करके अपने उत्पादन को बढ़ा सकता है और स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अपने फसलों के हेर फेर को इस प्रकार से प्रचलित कर सकता है कि भूमि की उर्वरा शक्ति भी कम नहीं हो पाती और राष्ट्र की आवश्यकतायें यथा योग्य प्राथमिकतायें पा जाती हैं।

इसमें यह भी ध्यान रखना है कि यदि कृषक इस प्रकार बतलाये गये उपायों को अपनाने के लिये तैयार नहीं होता तो उसके क्या कारण हैं, उन कारणों को भी दूर करना आवश्यक है। यदि किसान ऐसी फसल बोने के लिए इच्छुक रहते हैं जिनसे उनकी आय में वृद्धि होती है परन्तु उनका उगाना राष्ट्र के हित में नहीं है या उन फसलों का क्षेत्रफल आवश्यकता से अधिक है तो उन पर

नियंत्रण भी लगाना होगा जिससे ऐसी फसलों के क्षेत्र को सीमित रक्खा जा सके।

जिन फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए राष्ट्र को आवश्यकता है, उनकी खेती का क्षेत्रफल बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन भी देना होगा और उनको ऐसे मूल्य पर क्रय करना होगा जिससे उन फसलों को अधिकाधिक उत्पन्न करने के लिये कृषक प्रेरित हो सकें।

फसल नियोजन की यह रूपरेखा इस उद्देश्य से प्रस्तुत की गई है कि विशेषज्ञ तथा नियोजक इस महत्व पूर्ण समस्या पर विचार कर सकें तथा ऐसे निष्कर्ष पर पहुंच सकें जिससे इसको यथाआवश्यक प्राथमिकता प्राप्त हो सके और राष्ट्र का हित हो सके।

—०—

(पृष्ठ ७ का शेष)

७ गुनी अधिक, उनके खेत की पैदावार हमसे २॥ गुनी, उनकी गायें हमारी गायों से १० गुना अधिक दूध देने वाली और खेती में काम करने वाले १०० आदमियों में केवल बारह। हमारे यहाँ खेती में काम करने वाले १०० में ७०। उनके यहां तीनों बातें बढ़िया हो गईं, जमीन ज्यादा, जमीन से उत्पादन ज्यादा और खेत पर काम करने वालों की संख्या कम। दूसरे मालदार देश ब्रिटेन को देखिये कि वहां १०० में केवल ५ व्यक्ति खेती करते हैं, बाकी लोग बैंकिंग, इन्जिनियरिंग, यातायात, कारखाने तथा अन्य तिजारत आदि करते हैं। जितने गरीब मुल्क हैं सबमें १०० में ६० से अधिक आदमी खेती ही करते हैं।

(क्रमशः)

—०—

नत्रजन-पौधों का प्रमुख भोजन तत्व

दूध नाथ सिंह तथा सुरेन्द्र नाथ सिंह

पौधों के विकास के लिए कुल १५ तत्वों की आवश्यकता होती है जिनमें मुख्य दस हैं—नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, गंधक, कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन। इनमें से तीन नत्रजन, फास्फोरस तथा पोटाश प्रमुख हैं जिनका प्रयोग पौधे अधिक मात्रा में करते हैं और साधारणतः इन्हीं की कमी की पूर्ति के लिए किसान खेत में खाद डालता है। इनमें भी नत्रजन का महत्व सर्वोपरि है जिसके कारण विभिन्न खादों (जैविक तथा नत्रजन दायक रासायनिक) का मूल्यांकन इस तत्व की मात्रा पर आधारित होता है।

यों तो वायुमण्डल में नत्रजन की इतनी प्रचुरता है कि यदि पौधे इसे गैस के रूप में लेते होते तो इस तत्व की कमी का कभी भी अनुभव न होता। पर समस्या तो यह है कि लगभग सारे ही पौधे इस तत्व को केवल नाइट्रेट और अमोनिया के रूप में ही ग्रहण कर सकते हैं। नत्रजन को इन रूपों में परिवर्तित करने का काम विभिन्न शाकाणु करते हैं, यदि भूमि में उचित ताप तथा नमी हो और उसमें इतना भुरभुरापन हो कि हवा का संचार भली भांति होता रहे। यह क्रिया भूमि के ऊपरी भाग में ही १०-१२ इंच तक होती है और साधारणतः इससे अधिक गहराई में नहीं।

भूमि में स्थित नत्रजन मिश्रित जैविक पदार्थ (आर्गानिक मैटर) से अमोनिया बनाने वाले शाकाणु उनसे भिन्न होते हैं जो नाइट्रेट बनाते हैं। नाइट्रेट बनाने वाले शाकाणुओं (नाइट्रोसोमोनास तथा नाइट्रोबैक्टर) को नाइट्रीफाइंग शाकाणु (नाइट्रीफाइंग बैक्टीरिया) कहते हैं। ये ही शाकाणु बिना सड़े गले जैविक पदार्थ जैसे गोबर या कूड़ा करकट की खाद, हरी खाद अथवा अन्य वानस्पतिक पदार्थ को सड़ाते भी हैं और साथ ही जो कुछ भी नाइट्रेट जमीन में होता है, उसका प्रयोग अपने पोषण के लिए करते रहते हैं। फल यह होता है कि सड़ान की क्रिया के समय खेत में नाइट्रेट का अभाव हो जाता है। यही कारण है कि पर्याप्त मात्रा में खाद देने पर भी उस खेत की फसल कमजोर रहती है जिसमें यह (खाद) भली-भांति सड़ गल कर

फसल के बोने के समय तक मिट्टी के साथ एक रस नहीं हो जाती। यदि ऐसी परिस्थिति में जब खेत में पड़ी खाद सड़ी न हो, बुआई करनी ही पड़ जाय तो खेत में नत्रजनिक उर्वरक जैसे अमोनियम सल्फेट, यूरिया, अमोनियम नाइट्रेट अथवा अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट डालकर बुआई करनी चाहिए जिससे पौधों को प्रारम्भिक अवस्था में नाइट्रेट की कमी के कारण हानि न पहुँचे। कुछ ऐसे शाकाणु भी होते हैं जो वायुमण्डल से नत्रजन लेकर नाइट्रेट के रूप में परिवर्तित करते रहते हैं। इन शाकाणुओं को दो जातियों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो राइजोबियम नाम्नी वह जो सनई, ढैंचा, ग्वार, उर्द, मूंग, चना, मटर तथा अरहर इत्यादि दालदार पौधों के सहवास में नत्रजन को नाइट्रेट के रूप में खेत में एकत्रित करते हैं और दूसरे वह 'अजोटोबैक्टर' जो स्वतन्त्र दशा में रहकर वायुमण्डल की नत्रजन को ऐसे रूप में परिवर्तित कर, जिसमें पौधे उसे भोजन के रूप में ग्रहण कर सकें, भूमि में इस तत्व की वृद्धि करते हैं।

दालदार पौधों की जड़ों में पाई जाने वाली गांठें या घुंडियाँ उन शाकाणुओं के निवास स्थान हैं जो अपना भोजन—कार्बोहाइड्रेट तथा खनिज पदार्थ—इन पौधों से लेकर बदले में उनको वायुमण्डल की नत्रजन से निर्मित प्रोटीन जैसे पदार्थ देते रहते हैं। इस प्रकार इन पौधों तथा इनकी जड़ों की ग्रन्थियों में पाये जाने वाले शाकाणुओं में भोजन तत्वों का आदान-प्रदान होता रहता है। ऐसी पारस्परिक लाभ पहुँचाने की क्रिया को 'सिम्बियोसिस' कहते हैं।

भूमि की ऊपरी सतह पर जो बराबर नम रहती है, जैसा कि धान के पानी भरे खेतों में होता है, कुछ जाति की काई (अल्गी) होती है जिनमें पत्तियों में पाया जाने वाला हरा रंग पर्ण हरिम (क्लोरोफिल) होता है और जो वायुमण्डल की नत्रजन को अमोनिया रूप में परिवर्तित करने की क्षमता रखती है। धान के पौधे इस अमोनिया को भोजन रूप में लेते रहते हैं।

उपरोक्त शाकाणुओं को यदि कृषकों के मित्र की संज्ञा दी जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे शाकाणु भी पृथ्वी में पाये जाते हैं जिन्हें डिनाइट्रीफाइंग शाकाणु (डिनाइट्रीफाइंग बैक्टीरिया) कहते हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों में यानी जब मिट्टी में नमी की कमी होती है और उसमें वायु का संचार नहीं होता, खेत में एकत्रित नाइट्रेट को पुनः नत्रजन गैस के रूप में परिवर्तित कर उड़ा देते हैं। किसान की कार्यकुशलता इसमें है कि अपने मित्र शाकाणुओं को खेत में उचित जैविक पदार्थ

देकर, गोड़ जोत कर, वायु के संचार का प्रबन्ध कर तथा नमी को स्थिर रख कर क्रियाशील बनाये रक्खें और शत्रु शाकाणुओं को पनपने न दें।

हमारे देश में वर्षा ऋतु के चार महीनों में ही प्रकृति से खेतों को जल मिलता है और शेष आठ महीनों में यदि कभी वर्षा हुई भी तो नाम मात्र। ग्रीष्म ऋतु में तो इतनी गर्मी पड़ती है कि असह्य हो जाती है। इस उष्णता का फल यह होता है कि रवी की फसल कटते ही खेत की नमी उड़ जाती है। जमीन की सतह ठोस हो जाती है और जीवांश जल जाता है। नाइट्रीफाइंग शाकाणुओं की बाढ़ जीवांश के अभाव में रुक जाती है और नमी की कमी तथा ठोस मिट्टी में वायु का संचार न होने से वे शिथिल पड़ जाते हैं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, शत्रु शाकाणुओं (डिनाइट्रीफाइंग बैक्टीरिया) को क्रियाशील बनाने के लिए सर्वथा उपयुक्त है। ऐसी स्थिति में कोई आश्चर्य नहीं यदि हमारी जमीन में नत्रजन तथा जीवांश का इतना अभाव हो।

नत्रजन मिलने पर पौधे खूब पनपते हैं, उनमें अधिक डाल पात होता है और पत्तियाँ गाढ़े हरे रंग की हो जाती हैं जो स्वस्थता का परिचायक है। नत्रजन की ही उपस्थिति में पौधे फास्फोरस और पोटाश भी समुचित मात्रा में ले पाते हैं। नत्रजन की कमी से पौधों की बढ़वार रुक जाती है और जड़ें ठीक से विकसित नहीं होतीं। डाल पात में पीलापन आ जाता है, दाने छोटे रह जाते हैं और सिकुड़ जाते हैं, फलतः उपज कम होती है पर 'अति सर्वत्र वर्जयेत' को भी याद रखना आवश्यक है। यदि कहीं खेत में अत्यधिक नत्रजन वाली खाद दे दी जाय तो पौधों में डाल पात तो खूब होगा पर फूल फल कम और देर से आयेंगे तथा दाने घटिया निकलेंगे। अधिक डाल पात होने से फसल गिर जाती है और साथ ही बीमारियों का प्रकोप भी अधिक होता है।

भारत की लगभग एक चौथाई भूमि में सिंचाई का प्रबन्ध है, शेष क्षेत्र असिंचित हैं। अतएव अधिकांश खेतों को, मुख्यतः उनका जो मटियार या दूमट मटियार हैं, रबी की फसल काट लेने पर साधारण हलों या फावड़े से जोतना गोड़ना सम्भव नहीं जिससे जमीन की मिट्टी परिपक्व हो जाय, घासफूस तथा कीड़ों का नाश हो जाय और उसमें वायु का संचार हो सके। स्पष्ट है कि ऐसी दशा में शत्रु शाकाणु ही क्रिया शील होंगे और नत्रजन को उड़ाते रहेंगे।

भारी मिट्टी वाले क्षेत्रों को रबी की फसल कटने पर सींच कर और हल्की भूमि तथा चना वाले खेतों को जिनमें साधारणतः सिंचाई

नहीं होती वैसे ही जोता जा सकता है पर ग्रीष्म ऋतु की जुताई की महत्ता का ज्ञान अभी अधिकांश किसानों को नहीं हो पाया है जिस ओर उनका ध्यान विकास विभाग के कर्मचारियों को आकर्षित करते रहना चाहिए। कभी कभी अप्रैल-मई में अकस्मात वर्षा हो जाती है। यदि ऐसा हो तो किसान भाइयों को इसका लाभ उठाना चाहिए और जितने खेतों को जोत कर खोल सकें, खोल देना चाहिए। ऐसा करने से खेत की उर्वरता बनी रहेगी, पहली वर्षा का पानी जिसमें पौधों के प्रयोग में आने वाली नत्रजन तथा वानस्पतिक पदार्थ पर्याप्त होता है, खेत सोख सकेगा और साथ ही खरीफ की बुवाई के लिए जमीन शीघ्र तैयार की जा सकेगी। इन सुझावों के कार्य रूप में परिणित होने पर भी अधिकांश असिंचित क्षेत्रों का जुतना सम्भव नहीं और तब तक नत्रजन के अभाव की समस्या बनी रहेगी और उसकी तथा अन्य आवश्यक भोजन तत्वों की पूर्ति खाद देकर ही की जा सकती है।

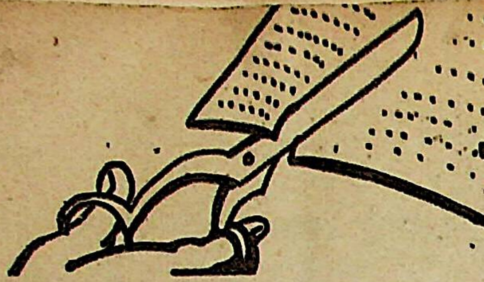
× × ×

—०—

विज्ञप्ति

किसानों के लिये उत्तम प्रकार के बीज उपलब्ध करने के दृष्टिकोण से विकास खंडों में बीज वृद्धि फार्मों (सीड मल्टीप्लीकेशन फार्म) की स्थापना हेतु कुछ दिन हुए, एक योजना चालू की गयी थी। जब इन प्रक्षेत्रों (फार्मों) के लिये भूमि प्राप्त करने का प्रश्न उठा तब यह पाया गया कि इसमें सामान्यतया छोटी जोत वाले किसान प्रभावित हुए हैं और कुछ परिस्थितियों में, उन्हें अपने जीवन-निर्वाह के सभी साधनों से वंचित हो जाना पड़ेगा।

बीज वृद्धि फार्मों की स्थापना हेतु किसानों से भूमि प्राप्त करने के बजाय प्रदेशीय सरकार ने अब उत्तम प्रकार के बीज की आवश्यकताओं की पूर्त्ति हेतु वर्तमान राजकीय प्रक्षेत्रों पर यथासम्भव अधिकतम परिमाण में घनीभूत खेती करने का निश्चय किया है। इसलिये ऐसे फार्मों के लिये भूमि प्राप्त करने के सम्बंध में विचाराधीन सभी कार्यवाहियाँ प्रदेश में आगे के लिये स्थगित कर दी जायेंगी।



समाचार संकलन

भिंडी तोड़ने का सही समय

भिंडी तोड़ना फल आने के चौथे से छठे दिन तक सबसे अच्छा रहता है ।

यह असम, जोरहट के कृषि कालेज में देखने से पता चला ।

यह देखा गया है कि फलियों के फलने के छठे दिन से रेशे बनने आरम्भ हो जाते हैं और दसवें दिन तक उनमें रेशे पूरी तरह से निकल आते हैं और वे बाजार के लिए बेकार रहते हैं ।

यह पाया गया कि फलियों को फलने के तीसरे और चौथे दिन तक तोड़ने पर उपज अधिक मिलती है और जब नीचे की फलियों को पूरी तरह से पकने दिया जाता है, तब पौधों में फल आने बंद हो जाते हैं या केवल थोड़े से ही फल लगते हैं ।

इसलिए भिंडी तोड़ने वालों को सलाह दी जाती है कि वे फलियों को फलने के तीसरे और चौथे दिन तोड़ें । ऐसी फलियां यातायात में खराब नहीं होतीं और शीत भंडार में अच्छी हालत में रहती हैं । उन्हें हर पौधे से इस तरह भिंडियां भी अधिक संख्या में मिलेंगी, और अधिक लाभ प्राप्त होगा ।

कच्ची भिंडियों में पोषण महत्व पकी हुई भिंडियों की अपेक्षा अधिक पाया गया है ।

नये किस्म का पुदीना

जम्मू-कश्मीर में एक नये किस्म का पुदीना उगाया गया है । इसमें भारत में होने वाले साधारण किस्म के पुदीने और जापानी पुदीने के मुकाबले अधिक तेल निकलता है ।

इस नये किस्म के पुदीने से ५ प्रतिशत और इससे भी ज्यादा तेल निकाला गया है जबकि जापानी पुदीने में ३ से ४ प्रतिशत तक तेल निकला है । भारत में जो पुदीना होता है, वह घटिया किस्म का होता है और इसमें से एक प्रतिशत भी तेल नहीं निकल पाता ।

इस नये किस्म के पुदीने को 'जम्मू-पुदीना' नाम दिया गया है । अब देश में बड़े पैमाने पर इसकी खेती करने के जतन किये जा रहे हैं । जम्मू-कश्मीर की प्रयोगशाला के बाग में यह पुदीना उगाया गया । इसके पौधे बड़े बड़े हुए और इसमें पत्तियां भी काफी आयीं ।

—o—

शेर सिंह, उपनिदेशक, प्रसार, शिक्षा एवं प्रशिक्षण ब्यूरो, कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा प्रसार, शिक्षा एवं प्रशिक्षण ब्यूरो प्रेस, लखनऊ में मुद्रित तथा प्रकाशित

प्रधान सम्पादकः शेर सिंह
सम्पादकः राम कृपाल द्विवेदी

पंजीयित संख्या—ए १६=६